International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 3; Issue 3; March 2016; Page No. 419-425

संस्कृत साहित्य में रस की अवधारणा

डॉ0 माधवी शर्मा
प्राचार्य, डी0 बी0 (पी0 जी0) महाविद्यालय, खेरली, अलवर, राजस्थान, भारत।

प्रस्तावना

काव्य एक वट वृक्ष है जिसकी शब्द, अर्थ, गुण, दोष, रीति और अलंकारादि शाखाऐं तथा प्रशाखाऐं हैं और इन सबकी प्राणदायिनी शक्ति रस है। रस शब्द की व्युत्पत्ति है– (1) रस्यते इति रसः अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाये वह रस है। (2) सरसे इति रसः। 'जिसका बहाव हो' वह रस है। रस के दो धर्म हैं स्वाद और द्रवत्व। ऋग्वेद में रस का प्रयोग सोमरस के आव्वादन के अर्थ में करते हुए लिखा है–

'दधानः कलशे रसम्'

ब्राह्मण ग्रन्थों में रस को मधु के अर्थ में लिया है– ''रसौ वै मधु'' तैत्तिरीय तथा छान्दोग्य उपनिषद में रस को द्रवत्व तथा आस्वादन दोनों रूपों में किया है। श्रव्य काव्य के पठन अथवा श्रवण में जो अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है, वह रस है। रस अन्तःकरण की वह शक्ति है जिसके कारण इन्द्रियां अपना कार्य करती हैं, मन कल्पना करता है, स्वप्न की स्मृति है? रस आनन्द रूप है और यही आनन्द का रूप है और इसी आनन्द में विशाल का रस आनन्द रूप है और यही आनन्द का रूप है और इसी आनन्द में विशाल का, विराट का अनुभव भी होता है। रस अपूर्व की उत्पत्ति हैं रस का यह अपूर्व रूप अप्रमेय और अनिवर्चनीय है।

जिस प्रकार दूध, अम्ल आदि खट्टे पदार्थों के सम्मिश्रण से दूसरे रूप में परिणित हो जाता है और यह परिणित अवस्था 'दही' कहलाता हैं उसी प्रकार द्राक्षा, कर्पूर और मिश्री तीनों के सम्मिश्रण से 'प्रपानक' रस बन जाता हैं इस प्रपानक रस में पृथक रूप से किसी भी पदार्थ का स्वाद नहीं आता है अपितु संयुक्त रूप में 'मधुर' स्वाद का चर्वण होता है। उसी प्रकार रति आदि स्थायी भाव में कोई भेद नहीं होता है। लंकिन मशीन में पेलने रूपी एक विशिष्ट प्रक्रिया के बाद ही गन्ने को चीनी नाम दिया जाता है। उसी प्रकार स्थायी भाव भी एक विशिष्ट प्रक्रिया के बाद ही रस कहलाते हैं।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने रस के स्वरूप और उसके आस्वादन के प्रकार को बताते हुए लिखा है–

सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादरसहोदरः।।
लोकोत्तरचमत्कार प्राणः कैश्चितत्प्रमातृभिः।
स्वाकारणदभिन्नत्वेनाय मास्वाद्यते रसः।।

रजोगुण एवं तमोगुण को हटाकर सत्व गुण के उद्रेक से विभाव, अनुभाव एवं सन्चारी भावों में विभाजित न होकर अखण्ड रस रूप में ही इसका आस्वादन किया जा सकता है। रस की अनुभूति विभावादि के अभेद से होती हैं रस स्वप्रकाशमान है अर्थात् इसको प्रकाशित करने के लिए किसी अन्य की जरूरत नहीं होती है। यह आनन्दमय तथा चमत्कारजनक है रसास्वादन के समय अन्य ज्ञेय विषय के सम्पर्क से रहित है अर्थात् जिस समय से रस के आस्वादन की अनुभूति होती है उस समय किसी अन्य विषय का ज्ञान नहीं रहता हैं रस ब्रह्मनन्द सहोदर है क्योंकि परमात्मा के ज्ञान के समय केवल परमात्मा की अनुभूति होती है, किन्तु रस की अनुभूति के समय विभाव अनुभव एवं रति आदि संचारी भावों की भी अनुभूति होती है।

भरतमुनि ने रस की व्याख्या करते हुए लिखा है–

'विभावानुभावव्यीभचारिसंयोगाद्र रस निष्पत्तिः।

विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निपत्ति होती है। रस की उत्पत्ति सहृदय सामाजिकों के हृदय में होती है। 'भाव' मानव मन के अर्धचेतन भाग में छद्मावस्था में होता है। भाव मानव हृदय में तरंग की भांति उठते हैं और नष्ट हो जाते हैं इसलिए ये क्षणिक हैं। रस का बीज भाव है। रस का न्यूकिलियस भाव हैं रस का चर्वण या उपभोग करने वाले रसिक हैं,

विभाव को व्यक्त करते हुए लिखा है–

ज्ञायमानतया तत्रविनावो तत्र भावोपकृत्।
आलम्बनोध्दीपनत्वप्रभेदेन स च द्विधा।।

जिसका ज्ञान हो सके वह विभाव हैं विभाव स्थायी भाव को पुष्ट करने वाला होता है, यह विभाव सामाजिक हृदय को रसास्वाद कराता है स्थायी भाव को पुष्ट करता है, स्थायी भाव विभाव से ही रसरूप में परिणित होता है।

विभाव के दो भेद होते हैं – (1) आलम्बन विभाव (2) उद्दीपन विभाव। रामायण को देखकर या सुनकर राम या सीता में रामत्व या सीता का स्थापन होता है और सहृदय

सामाजिकों में हृदय में वासना रूप में अवस्थित रति आदि भाव रस रूप में परिणित हो जाते हैं। भतृहरि ने वौक्यपदीय में लिखा है –

शब्दोपहितरूपांस्तान् बुद्धेर्विषया शतान्।
प्रत्यक्षानिव कंसादीन् साधनत्वेन मन्यते।।

सहृदय सामाजिक जब किसी भी काव्य के अन्तर्गत कंस आदि का प्रयोग करते हैं तो उस कंस शब्द के आधार पर ही हम इसे ज्ञान का विषय बना लेते हैं और फिर हम वीर रस के आलम्बन विभाव के रूप में प्रत्यक्षतः' रूप, कर्म, नाम आदि के रूप में समक्षते हैं जिससे कि सहृदय सामाजिक को वीर रस का उद्रेक होता है। यह विभाव सामान्य गुणयुक्त होकर ही रस का उद्रेक हो करते हैं।

अग्नि पुराण में विभाव के विषय में लिखा है–

विभाव्यते हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते।
विभावो नाम सद्वेधाआलम्बनोद्दीपनात्मकः।।

आलम्बन विभाव के विषय में लिखा है–

रत्यादि भाववर्गोऽयं यथाजीवोपजायते।
आलम्बन विभावोऽसौ नायकादिभवस्तया।।

काव्य अथवा नाटक में नायक तथा नायिका के अक्षय से ही रस की उत्पत्ति सहृदय सामाजिक में होती हैं इस प्रकार नायक तथा नायिका, उपनायक एवं उपनायिका आलम्बन विभाव है। नायक के लिए नायिका तथा नायिका के लिए नायक आलम्बन है क्योंकि परस्पर दोनों में हृदय में एक दूसरे से रस का उद्रेक होता है। विक्रमोर्वशीय नाटक में जब पुरूरवाऊर्वशीय को देखता है तो उसके हृदय में श्रृंगार रस का उद्रेक होता है वह कहता है–

अस्याः संगविधौ प्रजापतिरभूचन्द्रो नु कान्तिप्रदः
श्रृंगारैकनिधिः स्वयं नुमदनो मासोनु पुष्पाकरः।।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयत्वावृत्तकौतुहलो
निर्मातुं ं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः।।

जनश्रुति है कि समस्त प्राणियों की रचना ब्रह्मा के द्वारा की गयी है लेकिन ऊर्वशी को देखकर ऐसा लगता है कि इसकी रचना रसहीन शिथिल इन्द्रियों वाले वृद्ध विधता के द्वारा नहीं की क्योंकि वेदों के निरन्तर अध्ययन से जड हृदयी तथा अरसिक हृदय वाला वृद्ध ब्रह्मा जिसका कि विषय भोगों के प्रति आसक्ति खत्म हो गयी है इस अनुपम मनोहर रूपवती ऊर्वशी के विषय में मेरी कल्पना है कि इसका सृजनकर्ता या तो चन्द्रमा स्वयं होगा जो कान्ति देने वाला है, श्रृंगार का एकमात्र कोष कामदेव रहा होगा या चन्द्रमा तथा कामदेव दोनों ने इसको नहीं बनाया हा अपितु फूलों से आच्छादित बसन्त ने इसकी रचना की होगी।

उद्दीपन विभाव का लक्षण दिया है–

उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये।

आलम्बन विभाव से उद्बुद्ध स्थायीभाव को और अधिक उद्दीप्त कर इसको प्राप्त कराते हैं उद्दीपन विभाव हैं। उद्दीपन विभाव में देश काल का समावेश तथा नायक नायिका प्रतिनायक की चेष्टायें, नेत्र विक्षेप आदि आंगिक चेष्टायें होती हैं। उद्दीपन विभाव का उदाहरण है–

करमुदयमहीधरस्तनाग्रे गलिततमः पटलांशुके निवेश्य।
विकसितकुमुदेक्षणं विचुम्बत्य मरेश दिशो मुखं सुधांशुः।।

यह चन्द्रमा (चन्द्रमा की तरह सुन्दर नायक) अपने प्रकाश से गिरा हुआ अन्धकार का वितान ही है (तमः पटल की तरह है) वस्त्र जिसका ऐसे उदयाचल ही है (उदयाचल की तरह ही है) स्तन जिसका ऐसे उसके अग्रभाग पर किरण को (हाथ को) रखकर अर्थात् हाथ से स्तन के अग्रभाग का आश्रय लेकर पूर्व दिशा के (नायिका के) विकसित कुमुद ही हैं नयन जिसके ऐसे अग्रभाग (मुख) को चूम रहा है। यहां श्रृंगार का रस चन्द्रमा उद्दीपक है। अनुभाव का लक्षण है–

उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैबहिर्भावं प्रकाशयन्।
लोके यः कार्यरूपं सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः।।

अपने–अपने कारणें से उद्बुद्ध रामादि के हृदय में वासनारूप में अवस्थित रत्यादि स्थायीभव को सहृदय सामाजिक में अनुभव कराते हैं। अनुभाव का उदाहरण है–

उज्जृम्भावनमुल्लसत्कुचतटलोलभ्रमदूभ्रूलत
स्वेदाम्भः स्नपितांगमयष्टिविगलदूव्रीडं सरोमाञ्चया।
धन्यः कोऽपि युवा सयस्य वदने व्यापारिता सस्पृहं
मुग्धे दुग्धमहाब्धिफेनपटलप्रख्याः कटाक्षच्छटाः।।

हे मुग्धा वह कोई भी युवक धन्य है, जिसके मुख की ओर तुमने कामवासना से पूर्ण होकर, मुंह से जँभाई लेते हुए, स्तनतट को ऊँचा उठाकर रोमाञ्चित होते हुए बौरोनियों की लता को चञ्चलता से विकृत करते हुए अपनी देह को पसीने की बूंदों से भिगोते हुए तथा लज्जा को छोड़ते हुए रोमाञ्चित होकर दुग्ध महासमुद्र के फेन समूह के समान कान्ति वाले, कटाक्षों की शोभा को व्यापारित किया, जिसकी ओर तुमने इस तरह के भाव से देखा वह युवक भाग्यशाली है। विभाव तथा अनुभाव ये दोनों लौकिक व्यवहार से प्रमाणित होते हैं। साहित्यशास्त्रियों ने अनुभाव को`सात्विक भाव माना हैं सात्विक भाव 8 हैं–

स्तम्भःस्ेववेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभंगोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः।।

(1) स्तम्भ (2) स्वेद (3) रोमाञ्च (4) स्वरभन्ग (5) वेपथु

(6) वैवर्ण्य (7) अश्रु और (8) प्रलय में सात्विक भाव हैं। जब नायक के द्वारा नायिका के अंगों का स्पर्श किया जाता है तो नायिका के सात्विक भावों का वर्णन है–

तनु स्पर्शादस्यादरमुकुलिते हन्त! न्यने
उदञ्चद्रोमाञ्चं प्रजाति जडतामंगमखिलाम्।
कपोलो धर्माद्रौ ध्रुवमुपरताशेषविषयं
मनः सान्द्रानन्दं स्पृशति झटिति ब्रह्म परमम्।।

आश्चर्य है कि इस (नायिका) के शरीर का जब नायक ने जैसे ही स्पर्श किया वैसे ही उस शरीर स्पर्श से उत्पन्न आनन्द के कारण उसके नेत्रों में कुछ उल्लास आ गया है और रोमाञ्च के कारण सारा शरीर जड़ता को प्राप्त हो रहा है। (इसमें स्तम्भ और रोमाञ्च है) कपोल ऊष्णता के कारण पसीने के जल से युक्त हो गये हैं (इसमें स्वेद है) और अधिक क्या कहा जाये मन समस्त बाह्य इन्द्रियों के विषयों के व्यापार से विरत (विमुख) होने के कारण निश्चिततः अति प्रगाढ़ आनन्द का उसी प्रकार सुख का अनुभव कर रहा है जैसे परम ब्रह्म के साक्षात्कार से जनित अलौकिक सुख का रस का अनुभव करता है। इस प्रकार वह परम आनन्द को प्राप्त कर रहा है। (इसमें प्रलय का वर्णन है।)

संचारी भाव –

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्याभिचारिणः
स्थायिन्युन्मध्रनिर्भद्याः कल्लोला इव वारिधौ।।

जो भाव विशेषतः अर्थात् आभिमुख से स्थायी भाव के रूप में कभी गिरते हैं और कभी उठते हैं। जेसे समुद्र में लहरें उठती हैं और गिरती हैं और अन्ततः उसी में विलीन हो जाती हैं। इस प्रकार व्यभिचारी भाव स्थायी भाव में ही उठते हैं और विलीन हो जाते हैं। व्यभिचारी भावों की संख्या बताते हुए लिखा है–

निर्वेदग्लानिशंगाश्रमधृतिजडताहर्ष दैन्यौघ्रयचिन्ता
स्रासेर्ष्यामर्षगर्वाः स्मृतिमरणःमदाः सुप्तनिद्राविबोधाः।
व्रीड़ापस्मारमौनाः सुमतिरलसतावेगतर्कावहित्था
व्याध्युन्मादौ विषादोत्सुकचपलयुतास्त्रिशदेते त्रयश्च।।

(1) निर्वेद (2) ग्लानि (3) शंका (4) श्रम (5) धृति (6) जडता (7) हर्ष (8) दैन्य (9) चिन्ता (10) त्रास (11) ईर्ष्या (12) अमर्ष (13) गर्व (14) स्मृति (15) मरण (16) मद (17) सुप्त (18) निद्रा (19) विबोध (20) व्रीडा (21) अपस्मार (22) मोह (23) मति (24) अलसता (25) वेग (26) तर्क (27) अवहित्था (28) व्याधि (29) उन्माद (30) विषाद (31) औत्सुवक्य (32) चपलता।

स्थायी भाव –

अविरूद्धा विरूद्धा वायं तिरोधातुमक्षमाः
आस्वादाङ्कुरकन्दाऽसौ भावः स्थामिति संमताः।।

वह ख्यादिभाव जो सजातीय या विजातीय अन्य भावों से तिस्कृत नहीं हो पाता स्थायी भाव कहलाता है। जैसे समुद्र में खारा या मीठा कोई भी पानी मिलकर समुद्र के पानी के जैसा हो जाता है। अर्थात समुद्र बाहर से आने वाले समस्त पानी को अपने जैसा बना लेता है उसी प्रकार रत्यादि स्थायी भाव अपने से प्रतिकूल तथा अनुकूल किसी भी भाव से अलग नहीं हो पाता तथा सभी प्रतिकूल तथा अनुकूल भावों को अपने जैसा बना लेता है। विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव स्थायी भाव का आश्रय लेते है। विभाव, अनुभाव और संञ्चारी भाव से युक्त स्थायी भाव ही 'रस' रूप में निर्मित होता है। अन्य भाव स्थायी भाव का तिरस्कार न करके स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं। स्थायी भाव के प्रकार हैं–

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्मष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च।।

स्थायी भाव हैं (1) रति (2) हास (3) शोक (4) क्रोध (5) उत्साह (6) भय (7) जुगुप्सा (8) विस्मय।

पदार्थेरिन्दुनिर्वेदरोमाञ्चादिस्वरूकैः
काव्याद्विभावसञ्चार्यनुभाव प्रख्यतां गत
भावितः स्वदते स्थायी रसः स परिकीर्तितः।

जब सहृदय सामाजिक काव्य या नाटक में वर्णित चन्द्र, निर्वेद, अश्रु आदि विभावः सञ्चारी भाव तथा अनुभावों को ग्रहण करता है तो हृदय में स्थित सञ्चारी भाव को भावना विषय बनाकर आस्वाद्य रूप में उत्पन्न करते है तो यह स्थायी भाव ही रस बन जाता है। रस भाव, विभाव, अनुभाव आदि कुछ न होकर भावना विषयीकृत स्थायी भाव की ही दशा है। दशा है। स्थायी भाव के आधार पर रसों की संख्या आठ है –

श्रृंगारहास्यकरूणरौद्रवीरभयानकाः
वीभत्सोऽद्युत इत्यष्टौरसाः शान्तस्था मतः।।

(1) श्रृंगार (2) हास्य (3) करूण (4) रौद्र (5) वीर (6) भयानक (7) वीभत्स (8) अद्भुत कुछ साहित्याचार्यों ने शान्त रस भी माना है।

श्रृंगार रस –

रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनैः
प्रमोदात्मा रतिः सैव यूणोरन्योन्यरवतयोः
प्रहृष्यमाणा श्रृंगारो मधुरांगविचेष्टितैः।।

परस्पर अनुरक्त नायक तथा नायिका के हृदय में रम्य, देश, काल, कला, वेश, भोग आदि के सेवन द्वारा आत्मा का प्रसन्न होना रति स्थायी भाव है। यह रूपी स्थायी भाव नायक तथा नायिका की मधुर आंगिक चेष्टाओं द्वारा परस्पर एक दूसरे के हृदय में पोषित होता है, यह श्रृंगार रस है।

नायिका नायक के उपभोग जनित श्रृंगार को अन्य नायिका से व्यक्त कर रही है

चक्षुर्लुप्तमषीकणं कवलितस्ताम्बूलरागोऽधरे
विश्रान्ता कबरो कपोलफलके लुप्तेव गात्रद्युतिः
जाने सम्प्रति मानिनि प्रणायिना कैरप्युपाय क्रमै–
र्भग्नो मानमहातरूस्तरूणि ते चेतः स्थलीवधितः।।

हे मानि तुम्हारी आंखों का काजल हल्का–हल्का घुल चुका है अर्थात् थोड़ा काजल तो आंखों में है और कुछ काजल प्रक्षालित हो चुका है यह रति से ही सम्भव है। तुम्हारा अधरोष्ठ की ताम्बूल लालिमा भी रति कालीन चुम्बनों के कारण लुप्त हो गयी है। तुम्हारा केशपाश का बन्धन ढीला हो गया है जिससे केश खुल कर कपोलों पर इस तरह निक्षिप्त हैं (गिरे हैं) ये सारी शारीरिक चिन्ह बताते हैं कि रात्रि में तुमने नायक के साथ सुरत क्रीड़ा की है। तुम तो केवल मान किसे बैठी थी न । ऐसा – आभिासित होता है कि तुम्हारे प्रियतम ने उपायों द्वारा तुम्हारे हृदय की स्थली लगा हुआ मान का बढ़ा हुआ वृक्ष अंततः तोड़ ही गिराया। इन सबसे प्रतीत होता है कि नायक ने किसी न किसी तरह तुम्हारे गुस्से को शान्त कर दिया।

श्रृंगार के दो भेद हैं–

(1) संभोग श्रृंगार
(2) विप्रलम्भ श्रृंगार

संभोग श्रृंगार –

दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ
यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः।।

परस्पर अनुरक्त भोग की लालसा वाले नायक–नायिका दर्शन, स्पर्शन आदि से अधरपास और चुम्बन विलास क्रियाऐं करते हैं एवं जहां परस्पर एक में भी प्रेम (अनुराग) का अभाव होता संभोग श्रृंगार है। संभोग श्रृंगार में नायिकाओं में प्रिय के प्रति काम क्रीड़ा आदि चेष्टाऐं होती हैं। संभोग श्रृंगार का उदाहरण –

धन्यासिया कथयएि प्रियसंगमेऽपि
बिस्रब्धचाटुकशतानिरतान्रेषु
नीवीं प्रति प्राणिहिते तु करे प्रियेण
सख्यः शपामि यदि किंचिऽपि स्मरामि।

विप्रलम्भ श्रृंगार –

''यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैतिविप्रलम्भोऽसौ।''

जिस श्रृंगार में रति अर्थात् नायक तथा नायिका का परस्पर अनुराग तो जीवित रहता है किन्तु नायक या नायिका को किसी कारण से प्राप्त नहीं होता है विप्रलम्भ श्रृंगार है। विप्रलम्भ श्रृंगार (1) पूर्वराग (2) मान (3) प्रवास और (4) करूण इन भेदों से चार प्रकार का होता है। विप्रलम्भ श्रृंगार का उदाहरण है–

उत्संगेवा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मदोत्रांग विरचित पदं गेयमुदांगतुकामा
तन्त्रीभार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथं चिद्
भूयो भूयः स्वयमषि कृतां मुर्च्छनां विस्मरन्ती।।

वीर रस –

वीरः प्रतापविनयाध्यवसायसत्त्व
मोहाविषादनयविस्मययविक्रमाद्यैः
उत्सहभूः स च दयारणदानयोगात्
त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रर्ध्या।।

प्रताप,विनय, कार्यकुशलता आदि विभावों के द्वारा उत्पन्न करूणा युद्ध दान आदि अनुभावों के द्वारा व्यक्त एवं गर्व, धृति, हर्ष, अमर्ष, स्मृति, मति, वितर्क आदि व्यभिचारी भावों से भावित उत्साह रूपी स्थायी भाव जब सहृदय सामाजिक के हृदय में स्थित होकर उनमें आनन्द का उद्रेक करता है तथा सहृदय सामाजिक उसका आस्वादन करता है तो वह वीर रस है। वीर रस का उदाहरण है–

भो लंकेश्वर। दीयतां जनकजा रामः स्वयं याचते
कोऽयं ते मति विभ्रमः स्मर नयं नाद्यापि किंचिद्गतम्।
नैवं चेत् खरदूषण त्रिशिरसां कण्ठासृजा पंकिलः
पत्री नैस सहिष्यते मम् धनुर्ज्याबन्धबन्धूकृतः।।

हे लंकेश्वर रावण ! सीता मुझे लौटा दो, राम जो कि राम नाम से प्रसिद्ध है तथा बालि को मारने वाला है, ऐसा मैं तुमसे स्वयं याचना कर रहा हूं। यह तेरा कोई बुद्धि विभ्रम है ? नीति का स्मरण करो, अब भी तेरा कुछ नहीं बिगड़ा है यदि तुम जैसा मैंने कहा है वेसा नहीं मानते हो, नहीं करते हो तो खर, दूषण और त्रिशिरा के कण्ठ के रूधिर से मलिन धनुष मोर्वी बंधन से बन्धु की तरह किया हुआ अर्थात् प्रत्यन्चा युक्त किया हुआ मेरा यह बाण तुमको सहन नहीं करेगा।

यहां रावण आलम्बन विभाव है। रावण के द्वारा किया हुआ सीताहरण उद्दीपन विभाव है। ऐसा कथन अनुभाव है। गर्व सञ्चारी भाव है। इस प्रकार विभाव, अनुभावादि के द्वारा आस्वादित होता हुआ राम का युद्धोत्साह स्थायी भाव है और अन्ततः सहृदय सामाजिकों के हृदय में वीर रस का उद्रेक करता है।

हास्य रस –

विकृताकृति वाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा।
हासः स्थात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रियप्रकृतिः स्मृतः।।

अपने विकृत वेष, भाषा आदि को या दूसरे के विकृत वेष, भाषा आदि को देखकर इन विभावों के द्वारा उत्पन्न होने वाला स्थायी भाव हास जब परिपुष्ट होता है तो वह हास्य

रस है। इस हास्य रस की उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकृतियां तथा तीन भेद होते हैं।
(1) उत्तम प्रकृति के स्मित और हसित
(2) मध्यम प्रकृति के विहसित और अवहसित
(3) अधम प्रकृति के अपहसित और अधिहसित।
इस प्रकार हास के छः भेद होते है। और हास के छः प्रकारों का बताता यह

श्लोक –

ईषत्फुल्लकपोलाभ्यां कटाक्षैरप्यनुल्बणैः।
अदृश्यदशनो, हासो मधुरः (1) स्मितमुच्यते।।
वक्त्रंनेत्रकपौलैश्चेदुत्फल्लैरूपलक्षितः।।
किञ्जित्लक्षित दन्तश्च तदा (2) हसितमिष्यते।
सशब्दं मधुरं कालगतं वदनरागवत्।।
आकुञ्चिताक्षि मन्द्रं च विदुर्विहसितं बुधाः।
निकुञ्चि तां सशीर्षश्च जिह्वदृष्टिविलोकनः।।
उत्फुल नासिकोहासो नाम्नोपर्हसितं मतम्।
अस्थानजः साश्रुदृष्टिराकम्पस्कन्धमूर्धजः।।
शारंगदेवेन गदि तो हासोऽपहसि ताह्वयः।
स्थूलकर्णः कटुध्वानोः वाष्पपूरप्लुतेक्षणः।।
कक्षोपगूढ़ पार्श्वश्च हासोऽति हसितम् मतम्।।

- **स्मित**–किञ्चित् विकसित (खिले हुए नेत्र) तथा स्पन्दन शील अधर
- **हसित**– कुछ–कुछ दांत दिखाई दे रहे हैं जिसमें
- **विहसित**– मनोहर ध्वनि है जिसमें ऐसा हास्य
- **अवहसित**– स्कन्ध और शिर के कम्पन्न युक्त हास्य
- **अपहसित** – अश्रुपूर्ण नेत्रों वाला हास
- **अतिहसित** – विक्षिप्त हो गये हैं जिसमें ऐसा हास्य

हास्य का उदाहरण है –

जातं मे परूषेण भस्मरजसा तन्रचन्दनोद्धूलनं
हारो वक्षासि यज्ञसूत्र मुचितं क्लिष्टाः जटाः कुन्तलाः।
रूद्राक्षैः सकलैः सरन्नवलय चित्रांशुकं वल्कलं।
सीतालोचन हारि कल्पित महो रम्यं वपुः कामिनः।।

मेरे शरीर पर लगी हुई इस कठोर भस्म से चन्दन की भूषा की गयी है। यह तपस्वी का बाना यज्ञोपवतीत वक्ष–स्थल पर हार का काम कर रहा हैं वे उलझी हुई लम्बी जटाऐं कोमल कुन्तल है। इन सारे रूद्राक्षों से शरीर पर रत्नों के कड़ों की तुलना की जा सकती है तथा वह वल्कल वस्त्र सुन्दर रेशमी वस्त्र बना हुआ है। सीता के नेत्रों का आकर्षण करने वाला कितना सुन्दर श्रृंगारी वेष कामी रावण ने बना लिया है। जिस तरह कोई कामी किसी रमैणी को आकृष्ट करने के लिए सुन्दर वेशभूषा धारण करता है, ठीक वैसे ही मैंने इस सन्यासी के वेष को धारण कर रखा है।

अद्भुत रस –

अतिलोकैः पदार्थैः स्याद्विस्मयात्मा रसोऽद्भुतः।
कर्मास्य साधुवादाश्रुवेपथुस्वेदगद्गदाः।
हर्षावेगधृतिप्राया भवन्ति व्यभिचारिणः।।

लोक सीमा को अतिकान्त करने वाले अलौकिक पदार्थ के दर्शन श्रवणादि से उत्पन्न साधुवादितादि अनुभावों के द्वारा पुष्ट विस्मय रूपी स्थायी भाव हर्ष आदि व्यभिचार के संभोग से सहृदय सामाजिकों के हृदय में अद्भुत रस का संचार होता है। अद्भुत रस का उदाहरण है–

दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभंगोद्यत
ष्टंकारध्वलिनरार्यबालचरित प्रस्तावनाडिण्डिभः।
द्राक्पर्यस्तकपालसंपुटमिलद्ब्रह्माण्डभाण्डोदर
भ्राम्यत्पिण्डितचण्डिभा कथमहो नाद्यापि विश्राम्यति।।

भुजदण्ड के खींचे हुए शिवजी के धनुष के टूटने से उत्पन्न राम के बाल्य चरितों की प्रस्तावना में डिण्डिम रूप टंकार ध्वनि झटिति गिरे हुए कपाल सम्पुट से पात्र के आकार वाले ब्रह्माण्ड का ऊपर के भाग को मिलाते हुए ब्रह्माण्ड रूपी भाण्ड के मध्य भाग में घूमते हुए इकट्ठी हो गयी है प्रचण्डता जिसकी ऐसी अब भी रूक क्यों नही रही है। यह आश्चर्य है।
यहां धनुष की टंकार आलम्बन विभाव, धनुष की विशालता उद्दीपन विभाव इसका इस रूप में वर्णन करना अनुभाव और हर्षादि संचारी भाव है, लक्ष्मण का विस्मय स्थायी भाव तथा सहृदय सामाजिकों के हृदय में स्थित स्थायी भाव औत्सुक्य है। इस औत्सुक्य से भाव, विभाव एवं व्यभिचारी भावों के संयोग से अद्भुत रस उत्पन्न होता है।

भयानक रस –

कर्मास्य साधुवादाश्रुवेपथुस्वेदगद्गदाः।
हर्षावेगधृतिप्राया भवन्ति व्यभिचारिणः।।

किसी की आवाज तथा शारीरिक भयानक रूप देखकर उससे उत्पन्न होने वाले भय नामक स्थायी भाव से शरीर का कंपकंपाना, पसीना छूटना, चेहरे का पीला पड़ना, चिन्तित होना आदि अनुभाव तथा दैन्य आदि, संचारी भावों का संयोग होता है तो भयानक रस उत्पन्न होता है। भयानक रस का उदाहरण है–

स्वगेहात्पन्थानं तत उपचितं काननमयो
गिरिं तस्मात्सान्द्रदुमगहनमस्मादपि गुहाम्।
तद्न्वंगान्वंगैरभिनिविशमानो न गणय
त्यरातिः कालीयेतव विजयगात्राचकितधीः।।

तुम्हारी विजययात्रा से चकित बुद्धिवाला शत्रु राजा डरकर घर से मार्ग पर, मार्ग से गहन वन में, वहां से भी घने पेड़ों से घिरे पर्वत से गुफा में जाकर छिप गया है। वहां

भी आकर वह अपने अंगो को अंगों में समेट लेने पर भी यह नहीं गिन पाता, नहीं सोच पाता कि तुम्हारे डर से कहां छिपे। घर से भागते भागते पर्वत की गहन गुफा तक पहुंच कर भी उसका भय नहीं मिटा, वह अभी भी इस डर से कि तुम अपनी सेना के साथ वहां न पहुंच जाये, छिपने की सोच रहा है।

करूण रस –

इष्टवधदर्शनाद्रा विप्रियवचनस्य संश्रभवाद्वापि।
एभिर्भावविशेषैः करूण रसों नाभ सम्भवति।।

इष्ट वस्तु के नष्ट हो जाने पर, अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति हो जाने से उत्पन्न रस करूण है। निश्वास, उच्छवास स्तम्भ, प्रलाप आदि करूण रस के विभाव है, स्वाप, अपस्मार, दैन्य, आधि, मरण, आलस्य, सम्भ्रान, विषाद, जड़ता, चिन्ता आदि व्यभिचारी भाव हैं तथा शोक स्थायी भाव हैं। करूण रस का उदाहरण है–

विपिने क्व जटानिबन्धनं तव चेदं नव मनोहरं वपुः।
अनयोर्घटना विधेः स्फुटं ननु खगेन शिरीषकर्त्तनम्।।

गहन वन में प्रवेश करने के लिए कहां तुम्हारा ऋषि–मुनियों द्वारा निर्दिष्ट जटा धारण करना और कहां तुम्हारा यह कोमल शरीर। भाग्य के प्रबलता के कारण इन दोनों की एक साथ उत्पत्ति वस्तुतः तलवार की धार से शिरीष पुष्प के अतिकोमल अग्रभाग को काटने के समान हैं। यहां राम आलम्बन विभाव है, वन के लिए राम का प्रस्थान करना उद्दीपन विभाव है, दैव निन्दा अनुभाव है। ग्लानि, विषाद आदि व्यभिचारी भाव हैं और शोक स्थायी भाव है।

रौद्र रस–

क्रोधो मत्सरवैरिवैकृतसमयैः पोषोऽस्यरौद्रोऽनुजः
क्षोभः स्वाधरदंशकम्पभृकुटिस्वेदास्यरागैर्युतः।
शसत्रोल्लासविकत्थनांसधरणीघातप्रतिज्ञाप्रहै–
रत्रामर्षमदौ स्मृतिश्चपलतासूयौप्रथवेगादयः।।

मात्सर्य विभाव से जनित अपकार आदि विभावों से क्रोधउत्पन्न होता है। क्रोध रूपी स्थायी भाव से रौद्र रस उत्पन्न होता है। शस्त्र को पुनः पुनः उठाना, जमीन पर चोट मारना, प्रतिज्ञा आदि करना अनुभाव है। अमर्ष, मद, स्मृति, चपलता, असूया आदि सञ्चारी भाव हैं। रौद्र रस का उदाहरण है–

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः
प्राणेषुवित्तनिचमेषु च नः प्रहृत्य।
आकृष्ट पाण्डववधूपरिधानकेशाः
स्वस्या भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः।।

लाक्षागृह में आग लगाकर, भोजन में विष देकर तथा सभा में अपमान कर हम पाण्डवों के प्राणों पर तथा हमारी राज्य सम्पत्ति पर कौरवों ने प्रहार कर दिया। इतना ही नहीं अपितु कौरवों ने हमारी पत्नी द्रोपदी के वस्त्र तथा बालों को खींच कर प्रताड़ित किया है। इस प्रकार हम पाण्डवों का अपमान तथा तिरस्कार करने वाले कौरव, मुझ भीमसेन के जीवित रहते हुए कैसे सुख से रह सकते हैं।

वीभत्स रस –

वीभत्सः कृमिपूरितगन्धिवमथुप्रार्येजुगुप्सैकभू
रूद्वेगी रूधिरान्त्रकीक सबसामांसादिभिः क्षोभणः।
वैराग्याज्जघनस्तनादिषु घृणाशुद्धोऽनुभावैवृतो
नासावक्रविकूणनादिभिरिहावेगार्तिशंकादयः।।

वीभत्स रस कृमि, दुर्गन्ध, वमन आदि विभावों से, जुगुप्सा रूपी स्थायी भाव से उत्पन्न होने वाला रस है। रक्त, आंत, हड्डियां तथा मर्जी व मांस आदि विभावों से वीभत्स रस उत्पन्न होता हैं जघन, स्तन आदि के प्रति वैराग्य से जनित घृणा से वीभत्स रस उत्पन्न होता है। वीभत्स रस के अनुभाव नाक को चढ़ाना, सिकोड़ना आदि तथा सञ्चारी भाव आवेग शंका आदि है। वीभत्स रस का उदाहरण है–

उत्कृत्योकृत्य कृतिं प्रथमपथ पृथूच्छोथ भूयांसिमांसा
न्यं सासिफिव पृष्ठपिण्डाद्यववयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा।
आर्तः पर्यस्त नेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरंक करंका
दंकस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि त्रव्यम व्यग्रमत्ति।।

दरिद्र प्रेत पहले शव को चर्म को नखुनों से काटकर खा रहा है, इसके बाद बड़े शोध वाले स्कन्ध, नितम्ब, पृष्ठ क्षेत्र भाग आदि के भागों के अवयवों के विविध दुर्गन्ध मांस को खाकर बैठा हुआ हैं क्षुधा से रहित होने के कारण भी वह अपनी आंखों को उस सांस पर गड़ाये हुये है कि कहीं उसको कोई न ले जाये निकाले हैं दांत जिसने ऐसा अंक में रखे हुए शव के शरीर से अस्थि में संलग्न तथा जोड़ों में लगे हुए कच्चे मास को निश्शंक होकर खा रहा है।

यहां इस उदाहरण में दरिद्र प्रेत आलम्बन विभाव है, इसका शव को काटना तथा मांस को खाना उद्दीपन विभाव है। ग्लानि, उद्वेग आदि संचारी भाव है इन सबसे सहृदय सामाजिक के हृदय में स्थित जुगुप्सा स्थायी भाव के संयोग से वीभत्स रस का उद्रेक होता है।

'रसाः प्रतीयन्ते' रस प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार पकाने के संबंध से चावल को भात कहा जाता है और भातत्वेन व्यवहार किया जाता है उसी सहृदय सामाजिकों को रस की प्रतीति होती है। इसलिए उनके हृदय में रहने वाली वासना रसत्वेन कही जाती है। रत्गादि की नायक–नायिकाओं में अवस्थिति होती है लेकिन फिर भी प्रतीति से पूर्व उनकी अविद्यमानता होती है। जैसे पकने से

पूर्व चावल को भात की संज्ञा नहीं दी जाती उसी प्रकार रत्यादि स्थायी भावों को प्रतीति से पूर्व रस की संज्ञा नहीं दी जाती। रस सहृदय सामाजिकों के हृदय में प्रतीति तक ही रहता है घट तथा पट के समान इसकी स्थिति स्थायी नहीं होती। रस की उत्पत्ति केवल नाम से ही नहीं होती अपितु प्रतीति होने पर ही रस का आभास होता है।
रस का आस्वादन तादात्म्य भाव से किया जाता है। जिस प्रकार आत्मा और शरीर में अभेद की प्रतीति होती है उसी प्रकार रस का आस्वादन भी ज्ञाता और ज्ञान के अभेदरूप में किया जाता है। रस आस्वादन रूप है उससे भिन्न नहीं हैं 'रसः स्वाद्यते'। रस के विषय में कहा है–

रस्यमानतामात्रसारत्वात्प्रकाशशरीरादनन्य एव हि सः।

रस में रस्य मानता ही साररूप होती है, इसलिए ज्ञानरूप से भिन्न नहीं है। रत्यादि स्थायी भाव जब ज्ञान रूप में प्राप्त होकर सहृदय सामाजिकों के हृदय में अलौकिक आनन्दमय चमत्कार को उत्पन्न करते हैं तो वह 'रस' कहे जाते हैं। रस अनिवर्चनीय होता है।

'विलक्षण एवायं कृतिज्ञाप्तिभेदेभ्यः स्वादनव्य कश्चिद् व्यापारः।'

रसन्, आस्वादन, और चमत्कारण अर्थ में रस अलौकिक होता हैं आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में रसास्वादन के विषय में लिखा है पुर इव परिस्फुरन हृदयमिव प्रविशन् सर्वांगीणमिवालिंगन अत्यन्तसर्व मिव तिरोदधत् ब्रह्मास्वाक्षमिवानुभावयन् अलौकिक चमत्कारी श्रृंगारादिको रसः।''

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. तैत्तरीय उपनिषद
2. छान्दोग्य उपनिषद
3. शारदातनय भावप्रकाश
4. मम्मट काव्यप्रकाश
5. धनञ्जय– दशरूपक
6. विश्वनाथ– दशरूपक
7. राम चन्द्र – गुणचन्द – नाट्यदर्पण
8. अभिनव गुप्त – अभिनवभारती
9. मृच्छकटिकम् – शूद्रक
10. वेणीसंहार
11. रघुवंशम् – कालिदास
12. भास – स्वप्नवासवदत्तम्
13. हाल – गाथासप्तशती
14. कालिदास – अभिज्ञान शकुन्तलम्
15. भवभूति – मालती माधव
16. कालिदास – विक्रमोर्वशीयम्
17. रत्नावली
18. अग्निपुराण
19. भरतमुनि – नाट्यशास्त्र